श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

अनेकान्त और स्याद्वाद

लेखक

प्रो० उदयचन्द्र एम० ए०

सर्वदर्शनाचार्य, बौद्धदर्शनाचार्य, न्यायतीर्थ, शास्त्री

प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला-प्रकाशन

श्रावण
वी० नि० सं० २४९७
जुलाई १९७१

द्वितीयावृत्ति
मूल्य साठ पैसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तककी प्रथमावृत्ति वीरनिर्वाण संवत् २४७६ में महावीर-जयन्तीके अवसर पर प्रकाशित हुई थी, जिसे इक्कीस वर्ष हो रहे हैं। आज उसीकी यह द्वितीयावृत्ति प्रकट हो रही है। अरसेसे इसकी पाठक माँग कर रहे थे। आशा है इसके पुनः प्रकाशनसे उनकी माँग पूरी हो सकेगी।

इसके लेखक पण्डित उदयचन्द्रजी जैन, प्राध्यापक बौद्ध-दर्शन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हैं। इसे उन्होंने बड़े श्रम और विद्वत्ताके साथ लिखा है। ग्रन्थमालाकी ओरसे इसके लिए उन्हें धन्यवाद है। निश्चय ही इस पुस्तकसे जैन दर्शनके अनेकान्त और स्याद्वादके विषयमें पाठकोंको सही जानकारी प्राप्त होगी।

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री
संयुक्त मंत्री

डा० दरबारीलाल कोठिया
मंत्री

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला
१।१२८, डुमरांव कॉलोनी, अस्सी, वाराणसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त और स्याद्वाद

उपोद्घात

वर्तनान युग वैज्ञानिक (Scientific) और बौद्धिक (Rational) युग है। इस युगमें प्रत्येक बात तर्क (Logic) की कसौटीपर कसी जाती है और जो बात तर्ककी कसौटीपर कसने पर खरी नहीं उतरती है उसे माननेके लिये कोई तैयार नहीं होता। इस युगमें विश्वास (Belief) का तो एक प्रकारसे अन्त ही हो रहा है। शास्त्रमें क्या-क्या लिखा है इस बातको कोई सुनना नहीं चाहता। सबके सामने एक ही दृष्टि है और वह है विज्ञान (Science) और तर्ककी कसौटी। यद्यपि कुछ लोग तर्कको जीवनमें विशेष महत्त्व नहीं देते हैं। उनका कहना है कि तर्क भी तो परस्पर विरोधी देखे जाते हैं। एक ही विषय में अनुकूल और प्रतिकूल तर्कोंका सद्भाव उपलब्ध होता है। ईश्वरको सृष्टिकर्ता सिद्ध करनेमें तर्क दिये जाते हैं, लेकिन ईश्वरमें सृष्टिकर्तृत्वका अभाव सिद्ध करनेमें भी ठीक उससे विपरीत तर्क दिये जाते हैं। कहा भी है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अतः उनकी दृष्टिमें तर्कके द्वारा किसी बातका निर्णय करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। लेकिन वर्तमान युगमें तर्कका ही आधिपत्य है। किसी विषयमें अनुकूल और प्रतिकूल तर्कोंका होना बुरा नहीं है, क्योंकि इससे वस्तुके स्वरूपके निर्णय करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यहाँ यह देखना चाहिये कि किसका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पल्ला भारी है, कौनसे तर्क ठीक हैं और कौनसे मिथ्या हैं। तर्क भी तो सम्यक् और मिथ्या होते हैं। अतः किसी बातका निर्णय करते समय तर्कके ऊपर भी दृष्टि रखनी होगी कि कौन तर्क कैसा है। कोई भी न्यायाधीश किसी विषयमें योग्य निर्णय तभी दे सकता है जब वह वादी और प्रतिवादीके अनुकूल और प्रतिकूल तर्कोंको सुन लेता है। इतना सब कहनेका तात्पर्य यह है कि वर्तमान समयमें प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक बातको तर्ककी तुलापर तौलना चाहता है और विज्ञानके चक्षुसे देखना चाहता है।

यह उन्नतिका युग है। वर्तमान युगमें विज्ञान भी चतुर्मुखी उन्नति कर रहा है। अणुबम (Atom bomb) और उद्‌जन बम (Hydrogen bomb) जैसे विनाशकारी अस्त्रोंके निर्माणके बाद चन्द्रलोककी यात्रा करके वैज्ञानिकोंने प्रगतिका एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है। अन्य ग्रहोंकी यात्राकी योजना भी चालू है। इस प्रकार जो बात विज्ञानसे सिद्ध होती है उसको हर एकको मानना पड़ता है। विज्ञान जो बतला दे और तर्क जो सिद्ध कर दे उस बातके विषयमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता है। ठीक भी है—हाथके कंगनको आरसीकी क्या आवश्यकता। अगर किसीको अग्निके उष्ण होनेमें सन्देह हो तो वह अग्निको छूकर देख ले।

अनुभूत बातमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती है। कहा भी है—'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'—अर्थात् प्रत्यक्ष बातमें प्रमाणकी क्या आवश्यकता है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक बातकी सिद्धिके लिए प्रमाण और युक्ति चाहता है। प्रमाण और युक्तिके बिना पुत्र भी पिताकी बात पर विश्वास नहीं करता। यहाँ विज्ञान और तर्कके विषयमें कुछ कहनेका अभिप्राय इस युगकी विशेषताको बतलाना है। क्योंकि इस युगमें विज्ञान और तर्कका बाहुल्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए अनेकान्त और स्याद्वाद पर भी वैज्ञानिक (Scientific) और तार्किक (Logical) दृष्टिकोण (Point of view) से करना ठीक होगा।

अनेकान्तका आधार

अब यह जान लेना आवश्यक है कि अनेकान्त क्या वस्तु है। 'अनेकान्त' जैनदर्शनका सबसे बड़ा सिद्धान्त है जिसकी भित्ति पर समस्त जैनतत्त्वज्ञान स्थित है। द्रत्येक मतके दो पहलू होते हैं—एक धर्म और दूसरा दर्शन। उसमें धर्मका सम्बन्ध आचार से है और दर्शनका सम्बन्ध विचारसे है। धर्ममें यह बतलाया जाता है कि हमको कौन-कौन कार्य करना चाहिए और कौन-कौन कार्य नहीं करना चाहिये। क्या खाना चाहिये, कैसे खाना चाहिए, पूजन कैसे करनी चाहिये, सामायिक कैसे करनी चाहिये, दान किसको देना चाहिये, हिंसा नहीं करनी चाहिये, झूठ नहीं बोलना चाहिए इत्यादि बातोंका प्रतिपादन धर्म करता है। दर्शनमें इस बातका विचार किया जाता है कि तत्त्व कितने हैं, उनका स्वरूप क्या है, आत्मा क्या है, परलोक क्या है, कोई सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं, जीव मरकर यहीं समाप्त हो जाता है या अगले जन्ममें जाता है, मुक्ति है या नहीं? इत्यादि। अर्थात् धर्मका मूल आचार है और दर्शनका मूल विचार है। यहाँ इस बातका ध्यान रखना भी आवश्यक है कि आचार और विचारमें घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्यका आचार उसके विचारके अनुसार ही होता है। जिसका ईश्वरमें विश्वास नहीं है वह किसी मन्दिरमें जाकर भगवान्की पूजा क्यों करेगा, जिसका अहिंसामें विश्वास नहीं है वह बलि चढ़ानेसे विमुख क्यों होगा, जिसका शान्तिमें विश्वास नहीं है किन्तु जिसका कहना है कि संघर्ष ही जीवन है वह शान्तिके वातावरणकी ओर दृष्टि न रखकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघर्षके वातावरणका ही प्रयत्न करेगा। दूसरी ओर मनुष्यके आचारका प्रभाव भी विचारों पर पड़ता है। जिसका ईश्वरमें विश्वास नहीं है वह यदि प्रतिदिन मन्दिर जाने लगे तो उसका ईश्वरमें विश्वास हो सकता है। जिसका अहिंसामें विश्वास नहीं है वह यदि अहिंसाकी ओर प्रवृत्ति करने लगे तो अहिंसामें उसका विश्वास हो सकता हैं। जो ऊपरसे अपवित्र रहता है उसके विचार पवित्र कैसे हो सकते हैं। बाह्य वातावरणका प्रभाव मनुष्यके विचारों पर पड़ता है। कहा भी है—'जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी। जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन'। ठीक भी है--मांसाहारियों-की प्रवृत्ति क्रूर ही होती है। इसके विपरीत शाकाहारियोंका हृदय स्वभावसे कोमल होता है। इतना सब कहनेका अर्थ केवल आचार और विचारमें सम्बन्ध बतलाना है। विचारका प्रभाव आचार पर पड़ता है और आचारका प्रभाव विचार पर पड़ता है। आचार और विचारका सम्बन्ध बतलानेसे धर्म और दर्शनका सम्बन्ध स्वयं सिद्ध हो जाता है। धर्म और दर्शनमें बड़ा गहरा सम्बन्ध है। वैसा ही सम्बन्ध जैसा कि शरीर और आत्माका।

यह भी सत्य है कि धर्म और दर्शन अनादिकालसे चले आए हैं। इस धरातल पर अनेक धर्मों और दर्शनोंका अस्तित्व सदासे रहा है। ऐसा कोई समय नहीं हो सकता जब किसी एक ही धर्मका सार्वभौम अधिकार संसार पर तो क्या, भारत पर भी रहा हो। हाँ, यह अवश्य है कि किसी धर्मका कभी अधिक प्रचार हो और कभी कम। धर्म और दर्शनका अस्तित्व परमावश्यक भी है, क्योंकि धर्म मनुष्यको नैतिक (Ethical) बनाता है और दर्शन विचार-वान् (Rational) बनाता है। भारतमें जैनधर्म, बौद्धधर्म, वैदिक धर्म आदि विविध धर्मोंका तथा इनके विविध दर्शनोंका सद्भाव दृष्टिगोचर होता है। भारतके बाहर भी विविध धर्म और दर्शन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाए जाते हैं। जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है धर्मको दर्शनसे और दर्शनको धर्मसे पृथक् नहीं किया जा सकता है। दोनों परस्परमें मिले हुए हैं। दोनोंका लक्ष्य भी एक है और वह है प्राणीको संसार-के दुःखोंसे छुड़ाकर मुक्ति प्राप्त कराना। प्रायः भारतीय समस्त धर्मों और दर्शनोंका लक्ष्य एक ही है। उस लक्ष्यकी प्राप्तिके मार्ग अवश्य भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन भारतके बाहर यह बात नहीं है। पाश्चात्य धर्म और दर्शनमें कोई सम्बन्ध नहीं है। वे पूर्व और पश्चिम दिशाकी तरह एक दूसरेसे नितान्त भिन्न हैं। पाश्चात्य दर्शनकी उत्पत्ति आश्चर्यसे हुई है और वह केवल जिज्ञासाकी पूर्ति करता है। संसारकी विचित्रताको देखकर लोगोंके मनमें एक प्रकारका आश्चर्य (Wonder) होता है और जिज्ञासा होती है कि यह क्या है उसी आश्चर्यका समाधान और जिज्ञासाकी पूर्ति दर्शन करता है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि भारतमें धर्म और दर्शनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनोंका लक्ष्य भी एक ही है। भारतीय दर्शन दो भागोंमें विभक्त है—वैदिक दर्शन और अवैदिक दर्शन। जो वेदको मानते हैं वे वैदिक दर्शन हैं और जो वेदको नहीं मानते वे अवैदिक दर्शन हैं। वैदिक दर्शन छह हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त। अवैदिक दर्शन तीन हैं—जैन, बौद्ध और चार्वाक। प्रत्येक दर्शनके अपने-अपने विशेष सिद्धान्त हैं। जैनदर्शनके जितने सिद्धान्त हैं उनमें अनेकान्त तथा अनेकान्तसे सम्बन्धित स्याद्वाद अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ उसी अनेकान्तका कुछ परिचय करा देना इस पुस्तकका उद्देश्य है।

अनेकान्तका स्वरूप

अनेकान्त क्या है ? साधारण जनकी बात तो दूर है अभी तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ बड़े-बड़े विद्वान भी यह नहीं समझ सके हैं कि अनेकान्त किसे कहते हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने न तो अनेकान्तके असली स्वरूपको समझनेका प्रयत्न किया, न उसके स्वरूप पर निष्पक्षरूपसे विचार ही किया और न अनेकान्तसे सम्बन्धित जैन ग्रन्थोंको पढ़नेका ही कष्ट किया। अनेकान्तके विषयमें केवल अपनी ओरसे कुछ उलटी-सीधी धारणा बनाकर उसे यद्वा तद्वा कह दिया। जिन-जिन लोगोंने अनेकान्त और स्याद्वादमें दूषण बतलाये दिए हैं यदि उन्होंने अनेकान्तके स्वरूपको भीतरसे थोड़ा भी समझा होता तो वे वैसा करनेका साहस न करते।

अनेकान्त दो शब्दोंके मेलसे बना है—अनेक और अन्त। अनेकका अर्थ है एकसे भिन्न अर्थात् दो। और अन्त शब्दका अर्थ है धर्म। यद्यपि अनेकमें दोसे लेकर अनन्त धर्म आ सकते हैं लेकिन यहाँ दो धर्म ही विवक्षित हैं। प्राकृत, हिन्दी और अँग्रेजी भाषाओंमें केवल दो ही वचन होते हैं—एक वचन (Singular) और बहुवचन (Plural)। इसका तात्पर्य यह है कि दो भी बहुत या अनेक हैं। अनेकान्तके विचारके समय अनेकका अर्थ अनन्त करना ठीक प्रतीत नहीं होता। अनेकान्तका ऐसा अर्थ भी किया जाता है कि अनेक रूपादि गुण और पर्याय आदिसे विशिष्ट अर्थका नाम अनेकान्त है। अर्थको अनेकान्त कहना तो ठीक है लेकिन उसको केवल अनेक धर्म सहित होनेके कारण अनेकान्त कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा कहनेमें अनेकान्तका कोई महत्त्व नहीं रहता। जैनेतर दर्शन भी तो इस प्रकारका अनेकान्त (अनेकधर्मात्मक अर्थ) मानते ही हैं। ऐसा कौन-सा दर्शन है जो अर्थको रूप, रसादि विशिष्ट या सत्त्व, रज आदि अनेक धर्म विशिष्ट नहीं मानता। फिर जैनदर्शनके अनेकान्तमें विशेषता ही क्या रह जाती है।

तब प्रश्न होता है कि वास्तवमें अनेकान्त क्या है? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदेव तत् तदेव अतत्, यदेवैकं तदेवानेकम्, यदेव सत् तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्तः । –समयसार १०।२४७, आत्मख्याति

जो वस्तु तत्स्वरूप है वही अतत्स्वरूप भी है, जो वस्तु एक है वही अनेक भी है, जो वस्तु सत् है वही असत् भी है। तथा जो वस्तु नित्य है वही अनित्य भी है। इस प्रकार एक ही वस्तुके वस्तुत्वके कारणभूत परस्पर विरोधी धर्मयुगलोंका प्रकाशन अनेकान्त है।

और भी देखिए—

सदसन्नित्यानित्यादिसर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्तः ।

देवागम-अष्टशती कारिका १०३

वस्तु सर्वथा सत् ही है अथवा असत् ही है, नित्य ही है अथवा अनित्य ही है इसप्रकार सर्वथा एकान्तके निराकरण करनेका नाम अनेकान्त है। इसप्रकार अनेकान्तमें परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले दो धर्म रहते हैं। और इसप्रकार परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले दो-दो धर्मोंके अनेक युगल (जोड़ा) वस्तुमें पाए जाते हैं। जैसे नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत् इत्यादि। इसलिए परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले अनेक धर्मोंके समूहरूप वस्तुको अनेकान्त कहनेमें कोई विरोध नहीं है। वस्तु केवल अनेक धर्मोंका ही पिण्ड नहीं है किन्तु परस्पर विरोधी दिखनेवाले अनेक धर्मोंका भी पिण्ड है। प्रत्येक वस्तु विरोधी धर्मोंका स्थल है। वस्तुका वस्तुत्व विरोधी धर्मोंके अस्तित्वमें है। यदि वस्तुमें विरोधी धर्म न रहें तो वस्तु ही समाप्त हो जाय। यदि वस्तु सर्वथा एकरूप हो तो वह कुछ भी अर्थक्रिया (कार्य) नहीं कर सकेगी और अर्थक्रियाके अभावमें वह वस्तु रह ही कैसे सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तवादियोंकी समझमें यह बात नहीं आती कि वस्तुमें अनेक विरोधी धर्म पाये जाते हैं। वे सोचते हैं कि वस्तुमें विरोधी धर्मोंका होना तो नितान्त असंभव है। जैसे कि सिंह और गायका एक स्थानमें रहना असम्भव है। पर ऐसा माननेका कारण उनका दुराग्रह ही है। उनकी दृष्टिपर एकान्तवादरूप चश्मा चढ़ा हुआ है। चश्मेका जैसा रंग होता है पदार्थ वैसे ही दिखते हैं। यदि चश्मा हरा हो तो सब पदार्थ हरे दिखते हैं और यदि चश्मा लाल हो तो सब पदार्थ लाल दिखते हैं। इसीप्रकार जिसकी दृष्टिपर नित्यैकान्तका चश्मा चढ़ा है उसको सब पदार्थ नित्य ही प्रतीत होते हैं और जिसकी दृष्टिपर अनित्यैकान्तका चश्मा चढ़ा है उसको सब पदार्थ अनित्य ही प्रतीत होते हैं। वे एकान्तवादके आवेशमें वस्तुको एकान्तरूप ही सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं।

इस विषयमें हरिभद्र सूरिने कितना युक्तिसंगत लिखा है—

आग्रही बत निनीषति युक्तिं तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्॥

दुराग्रही व्यक्तिकी जिस विषयमें मति होती है उसी विषयमें वह युक्तिको लगाता है। लेकिन पक्षपातरहित व्यक्ति उस बातको स्वीकार करता है जो युक्तिसिद्ध होती है।

एकान्तवादी कहते हैं कि जो वस्तु सत् है वह असत् कैसे हो सकती है, जो वस्तु नित्य है वह अनित्य कैसे हो सकती है। सत् वस्तुके असत् होनेमें उन्हें विरोध आदि दोष प्रतीत होते हैं। ऐसा कहनेवालोंको आप्तमीमांसाके निम्न श्लोक पर थोड़ा ध्यान देना चाहिए—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥

आप्तमीमांसा १५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप आदि चतुष्टयकी अपेक्षासे सब वस्तुओंको सत् कौन नहीं मानेगा और पररूप आदि चतुष्टयकी अपेक्षासे उनको असत् कौन नहीं स्वीकार करेगा। इस प्रकारकी व्यवस्थाके अभावमें किसी भी तत्त्वकी व्यवस्था नहीं हो सकती है।

प्रत्येक पदार्थका अपना स्वरूप होता है जो कि अन्य सब पदार्थोंके स्वरूपसे भिन्न होता है। इसीप्रकार उसका अपना क्षेत्र, अपना काल और अपना भाव (स्वभाव) भी होता है। इन्हीं चारोंका नाम स्वरूपादि चतुष्टय है। अपने स्वरूपादिसे भिन्न जो पर पदार्थोंके स्वरूपादि चतुष्टय हैं वे पररूपादि चतुष्टय कहलाते हैं। घट घटद्रव्यकी अपेक्षासे घट है, पट (वस्त्र) द्रव्यकी अपेक्षासे घट नहीं है। उसका जो अपना क्षेत्र है उसकी अपेक्षासे वह घट है, पट-क्षेत्रकी अपेक्षासे घट नहीं है।

जिस काल (पर्याय)में वह है उस कालकी अपेक्षासे घटका सद्भाव है, पटके कालकी अपेक्षासे घटका सद्भाव नहीं है। इसी-प्रकार अपने स्वभावकी अपेक्षासे घटका अस्तित्व है और पटके स्वभावकी अपेक्षासे घटका अस्तित्व नहीं है। जिन लोगोंको घटके सत् और असत् होनेमें विरोध प्रतीत होता है क्या उन्होंने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि घटको घट ही क्यों कहते हैं पट क्यों नहीं कहते ? घटको घट इसलिए कहते हैं कि घटका काम घट ही करता है, पट नहीं। दूसरे शब्दोंमें घट अपनी अपेक्षासे ही घट है पटकी अपेक्षासे नहीं। अर्थात् घट अपनी अपेक्षासे सत् है और पट आदि अन्य समस्त पदार्थोंकी अपेक्षासे असत् है। घट है भी और नहीं भी है ऐसा सुननेमें विरोध तो अवश्य मालूम पड़ता है लेकिन यह विरोध साहित्यके विरोधाभास अलंकारके समान ही है। एक वाक्य है—'महात्मानः लक्ष्मीं तृणवन्मन्यन्ते। तद्भारेण नमन्त्यपि।' बड़े लोग लक्ष्मीको तृणके समान समझते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसके भारसे नम (दब) भी जाते हैं। यहाँ शब्दोंमें विरोध है। जब लक्ष्मी तृणके समान है तो उसके भारसे कोई कैसे दब सकता है। लेकिन अर्थमें यहाँ कोई विरोध नहीं है। उक्त वाक्यका ठीक अर्थ यह है कि बड़े लोग लक्ष्मीको तृणवत् समझते हैं लेकिन लक्ष्मी के होनेपर भी वे नम्र रहते हैं, उद्धत नहीं होते।

इसी प्रकार घटके सत् और असत् होनेमें जो विरोध प्रतीत होता है वह केवल शाब्दिक विरोध है। जब हम सत् और असत् के अर्थ पर विचार करते हैं कि घट सत् और असत् क्यों है तो उस समय विरोधकी गन्ध भी नहीं आती। घट अपनी अपेक्षासे है और पट आदिकी अपेक्षासे नहीं है। इसमें विरोधकी कौन-सी बात है। विरोध तो तब होता जब जिस दृष्टिसे वह सत् है उसी दृष्टिसे वह असत् भी होता। यदि कोई घटको अपने स्वरूप आदिकी अपेक्षासे सत् और उसी अपेक्षासे असत् कहता है तो उसके कहनेमें विरोध स्पष्ट है। लेकिन अनेकान्त सिद्धान्त ऐसा कभी नहीं कहता। वह तो अपने दृष्टिकोणको पहिले ही उपस्थित कर विरोधका अवसर ही नहीं आने देता। घटका सद्भाव घटकी अपेक्षासे ही है, पटकी अपेक्षासे नहीं। यदि पटकी अपेक्षासे भी घटका सद्भाव हो अर्थात् पटरूपेण भी घट हो तो जिसप्रकार पट आच्छादनका काम करता है उसी प्रकार घटको भी वह काम करना चाहिए। अर्थात् जो जो काम पट करता है वह सब काम घटको भी करना चाहिए। और जिसप्रकार पटरूपेण भी असत् हो तो घटको अपना काम भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि असत् पदार्थके द्वारा किसी भी प्रकारकी अर्थक्रिया नहीं होती है। शश (खरगोश)के शृङ्ग (सींग)से धनुष नहीं बनता है और न उससे वाण ही चलाए जाते हैं।

उक्त कथनका फलितार्थ यह है कि घट न सर्वथा सत् है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न सर्वथा असत् । किन्तु सत् और असत् दोनों है । तथा इस प्रकार माननेमें कोई विरोध भी नहीं है । घट यहां उपलक्षण है । घटके द्वारा यहाँ समस्त पदार्थोंका ग्रहण करना चाहिए । जिस तरह घट सदसत् दोनों रूप है उसी तरह समस्त पदार्थ सदसत् हैं । जो लोग पदार्थको सर्वथा सत् अथवा सर्वथा असत् कहते हैं वे एकान्तवादी हैं । पदार्थको सर्वथा सत् कहनेका अर्थ होगा कि घट जिस प्रकार अपनी अपेक्षासे सत् है उसी प्रकार पट आदिकी अपेक्षासे भी सत् है । और सर्वथा असत् कहनेका अर्थ होगा कि जिस तरह घट पट आदिकी अपेक्षासे असत् है उसी तरह अपनी अपेक्षासे भी असत् है । लेकिन सर्वथा सदैकान्तमें और सर्वथा असदैकान्तमें किसी प्रकारकी व्यवस्था नहीं बन सकती है । इसलिए एकान्तवादका दुराग्रह छोड़कर अनेकान्तका आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है ।

उक्त कथनसे यह सिद्ध हुआ कि वस्तुमें सत्त्व और असत्त्व दो विरोधी धर्म पाए जाते हैं । यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिए कि वस्तु ऐसे अनेक विरोधी धर्मोंका अविरुद्ध स्थल है । एक बस्तुमें अनेक विरोधी धर्म अविरोधरूपसे रहते हैं । वस्तुमें केवल सत्त्व और असत्त्व धर्म ही नहीं रहते किन्तु नित्यत्व और अनित्यत्व, एकत्व और अनेकत्व आदि धर्म भी एक ही समयमें रहते हैं ।

संसारका प्रत्येक पदार्थ नित्य और अनित्य दोनों है । कोई भी पदार्थ सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य नहीं है । यह तो सबके देखनेमें आता है कि घट आदि पदार्थ कुछ काल तक स्थिर रहते हैं और बादमें नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकारकी अनित्यताका अनुभव तो प्रत्येक व्यक्ति करता है । लेकिन इससे भिन्न एक दूसरे प्रकारकी अनित्यता है जो सबके अनुभवमें नहीं आती है । वह अनित्यता है पदार्थोंका प्रतिक्षण परिणमन । संसारका ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिसका क्षण-क्षणमें परिणमन न होता हो । वस्त्र धुलनेके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ दिन बाद एक साथ मैला नहीं होता है किन्तु प्रतिक्षण थोड़ा थोड़ा मैला होता रहता है। पकनेके लिए वर्तनमें चूल्हे पर रखे गए चावल एक साथ नहीं पकते, किन्तु चूल्हे पर बर्तनमें डालनेके समयसे ही उनमें थोड़ा थोड़ा पाक होता रहता है। इसी तरह आत्मा, आकाश आदि पदार्थोंमें भी प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है। इस प्रकारके परिणमनके होते रहनेपर भी वस्तुका सर्वथा नाश कभी नहीं होता। जो वस्तु जितनी है वह सदा उतनी ही रहती है, केवल उसकी पर्यायें बदलती रहती हैं। आधुनिक विज्ञान भी इस बातको स्वीकार करता है कि वस्तुके सूक्ष्म अंशका भी कभी नाश नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षासे नित्य है और पर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है। दूसरे शब्दोंमें प्रत्येक पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप है। वस्तुका लक्षण भी यही हैं। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित है वह सत् कहलाता है और सत् ही द्रव्यका लक्षण है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। सद् द्रव्यलक्षणम्।

त० सू० ५-२९,३०

किसी भी पदार्थकी एक पर्यायके नष्ट होनेके साथ ही दूसरी पर्याय उत्पन्न हो जाती है। लेकिन इससे द्रव्य का कुछ भी बनता बिगड़ता नहीं हैं, वह दोनों पर्यायोंमें विद्यमान रहता है। घटके फूट जाने पर कपाल (खपड़ियाँ) उत्पन्न हो जाते हैं। लेकिन इससे मिट्टी का क्या हुआ। वह तो जैसे घट पर्यायमें थी वैसे ही कपाल पर्यायमें भी है। पदार्थको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप सिद्ध करनेके लिए निम्न श्लोक पर ध्यान दीजिए—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥

आप्तमीमांसा ५९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक व्यक्तिको स्वर्णघटकी आवश्यकता थी, दूसरेको मुकुट-की और तीसरेको केवल स्वर्णकी आवश्यकता थी। वे सुनारकी दुकानपर गये। इतनेमें क्या देखते हैं कि सुनार सोनेके घटको तोड़कर मुकुट बना रहा है। इस पर सोनेके घटको चाहनेवाले व्यक्तिको शोक हुआ, क्योंकि उसके अभीष्ट घटका नाश हो गया था। मुकुटको चाहनेवाले व्यक्तिको मुकुटकी उत्पत्तिसे बड़ा हर्ष हुआ। लेकिन केवल सोनेको चाहनेवाले व्यक्तिको न हर्ष हुआ और न विषाद। घड़ा बना रहता तो भी उसका काम चला जाता और मुकुट बन गया तो भी उसकी कोई हानि नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययरूप है। यदि वस्तु ऐसी न होती तो एक व्यक्तिको मुकुटकी उत्पत्तिसे हर्ष; दूसरे व्यक्तिको घटके नाशसे शोक और तीसरे व्यक्तिको दोनों अव-स्थाओंमें माध्यस्थभाव क्यों होता। अतः वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है यह बात प्रत्यक्षसिद्ध है।

वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक मानना आवश्यक भी है। इसके विना काम हो नहीं चल सकता। सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य वस्तु कुछ भी कार्य नहीं कर सकती है। सर्वथा नित्य वस्तु सदा ज्यों-की-त्यों रहेगी। उसमें किंचित् भी विकार न होगा। फिर भला उसके द्वारा किसी कार्यकी आशा कैसे की जा सकती है। कहा भी है—

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥

आप्तमीमांसा ३७

सर्वथा नित्य पक्षमें किसी भी प्रकारकी क्रिया (कार्य) नहीं हो सकती है। क्योंकि इस पक्षमें परिणमनके अभावमें कोई भी पदार्थ कारक नहीं हो सकता है। जो सदा एकसा रहेगा—जो पहले-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अकारक अवस्थाको छोड़कर कारकरूपसे परिणमन नहीं करेगा वह किसीका कारक कैसे हो सकता है। नित्यत्वैकान्तवादियोंके यहाँ कारकके अभावमें किसी भी कार्यकी उत्पत्ति संभव नहीं है। जो जैसा है वह सदा वैसा ही रहेगा। जो संसारी है वह सदा संसारी ही रहेगा, मुक्तिको भी प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसप्रकार नित्यत्वैकान्तवादियोंके यहाँ विकारके अभावमें पुण्य, पाप, परलोक, बन्ध, मोक्ष आदि कुछ भी नहीं बन सकता है।

यही बात क्षणिकैकान्तवादियोंके विषयमें भी है। जो लोग कहते हैं कि पदार्थ सर्वथा क्षणिक है और एक क्षणका अथवा एक पर्यायका दूसरी पर्यायसे कोई सम्बन्ध नहीं है उनके यहाँ भी किसी कार्यकी उत्पत्ति संभव नहीं है। जब एक पर्याय उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाती है और दूसरी पर्यायके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो किसी कार्यकी उत्पत्तिकी कल्पना कैसे की जा सकती है। इस मतके अनुसार हिंसा कोई दूसरा ही करता है और उसका फल किसी दूसरेको मिलता है। क्योंकि हिंसा करनेवाला तो उसी समय नष्ट हो जाता है और उससे आगे उत्पन्न होनेवाले विचारे निर्दोष क्षणको उसका फल भोगना पड़ता है। बन्ध कोई दूसरा करता है और उसका फल किसी दूसरेको मिलता है। अर्थात् सर्वत्र कृतनाश और अकृत अभ्यागमका प्रसंग आता है।

इसप्रकार पदार्थको सर्वथा नित्य तथा सर्वथा अनित्य माननेमें अनेक दूषण आनेके कारण पदार्थ न सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य, किन्तु कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, अर्थात् अनेकान्तात्मक है। यद्यपि नित्यत्व और अनित्यत्व दो विरोधी धर्म हैं लेकिन वे वस्तुमें बिना विरोधके रहते हैं। द्रव्यकी अपेक्षासे पदार्थ नित्य है। जो द्रव्य जितना है वह सदा उतना ही रहेगा, उसका त्रिकालमें भी न एक अंश कम हो सकता है और न एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंश बढ़ ही सकता है। ऐसा होने पर भी उसकी पर्यायें क्षण-क्षणमें बदलती रहती हैं। इसलिए पर्यायकी अपेक्षासे पदार्थ अनित्य भी है।

इसीप्रकार पदार्थ एक और अनेक भी है। कोई भी पदार्थ न सर्वथा एक है और न सर्वथा अनेक है। मिट्टीसे बना हुआ घट एक और अनेक दोनों है। मिट्टी द्रव्यकी अपेक्षासे घट एक है क्योंकि घट मिट्टीका एक अभिन्न पिण्ड है। लेकिन वह पिण्ड मिट्टीके अनेक परमाणुओंके एकसाथ मिलनेसे बनता है इसलिए अनेक परमाणुओंकी अपेक्षासे घट अनेक है। अथवा रूप, रस आदि गुण और पर्यायोंकी अपेक्षासे घट अनेक है। यही बात प्रत्येक पदार्थके विषयमें है। आत्मद्रव्य भी अखण्ड द्रव्यकी अपेक्षासे एक है और प्रदेशोंकी अपेक्षासे अनेक है। अथवा ज्ञानादि गुण और सुख-दुःखादि पर्यायोंकी अपेक्षासे अनेक है। संसारके सम्पूर्ण पदार्थ भी सत्ताकी अपेक्षासे एक हैं। सत्ताकी दृष्टिसे चेतन और अचेतन पदार्थोंमें कोई भेद नहीं है, दोनों समानरूपसे सत् हैं अतः दोनों एक हैं। ऐसा होने पर भी प्रत्येक पदार्थकी सत्ता पृथक्-पृथक् है। घटकी सत्तासे पटकी सत्ता भिन्न है। अतः घट, पट आदि पदार्थ अनेक भी हैं। प्रत्येक पदार्थ एकरूप और अनेकरूप अर्थात् अनेकान्तात्मक है। एकत्व और अनेकत्व एक साथ वस्तुमें रहते हैं।

इसप्रकार सत्त्व और असत्त्व, नित्यत्व और अनित्यत्व, एकत्व और अनेकत्व इन तीन परस्पर विरोधी धर्मयुगलों (धर्मोंका जोड़ा)के द्वारा वस्तु अनेकान्तात्मक सिद्ध होती है।

वस्तुमें अनेक धर्मोंके रहनेका नाम अनेकान्त नहीं है किन्तु विरोधी अनेक धर्मयुगलोंके रहनेका नाम अनेकान्त है। कोई वस्तु सत् है, नित्य है, और एक है; इतना होनेसे वह अनेकान्तात्मक नहीं मानी जा सकती। किन्तु वह सत् और असत् दोनों होनेसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तात्मक है। इसीप्रकार नित्य और अनित्य, एक और अनेक होनेसे वह अनेकान्तात्मक है। सत्त्व-असत्त्वकी तरह अन्य भी अनेक विरोधी धर्मयुगल वस्तुमें रहते हैं, इसलिए अनेक विरोधी धर्मोंका पिण्ड होनेसे वस्तु अनेकान्तात्मक है। अनेक विरोधी धर्म किस प्रकार वस्तुमें रहते हैं इस बातको पहिले बतलाया जा चुका है। प्रत्येक धर्म भिन्न-भिन्न अपेक्षासे रहता है इसलिए विरोधी धर्मोंके एक साथ रहनेमें कोई विरोध नहीं आता।

लोकमें भी देखा जाता है कि एक ही व्यक्ति पिता है और पिता नहीं भी है। आप सोचेंगे कि यह कैसे हो सकता है कि मोहन पिता भी हो और पिता नहीं भी हो। लेकिन थोड़ा शान्त मनसे विचार कीजिए कि मोहन सोहनका ही पिता है, न कि संसारके समस्त पुत्रोंका। यदि मोहन कहे कि मैं तो पिता ही हूँ अर्थात् संसारके समस्त पुत्रोंका पिता हूँ तो उसपर ऐसी मार पड़े कि शिरमें एक भी बाल न रहे। इसलिए मोहनको यह मानना पड़ेगा कि वह सोहनका ही पिता है और अन्य लोगोंके पुत्रोंका अ-पिता (पिता नहीं) है। अर्थात् मोहन पिता और अ-पिता दोनों है। अब बतलाइए कि मोहनके पिता और अ-पिता होनेमें कौन-सा विरोध है। इसीप्रकार एक ही देवदत्त अपेक्षाभेदसे गुरु भी है, शिष्य भी है, शासक भी है, शास्य भी है, ज्येष्ठ भी है, और कनिष्ठ भी है। एक ही स्त्री अपेक्षाभेदसे माता भी है और पत्नी भी। पं० जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री भी हैं और नहीं भी हैं। आप कहेंगे कि यह कैसे? लेकिन थोड़ा सोचिए तो वह भारतके ही प्रधान-मंत्री हैं न कि ब्रिटेन, अमेरिका आदि समस्त देशोंके। इसलिए भारतका अपेक्षासे पं० जवाहरलालजीको प्रधानमंत्री और ब्रिटेन आदिकी अपेक्षासे अप्रधानमंत्री माननेमें कौन-सा विरोध है? अर्थात् कोई नहीं। प्रधानमंत्रित्व और अप्रधानमंत्रित्व दो विरोधी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म एक साथ एक व्यक्तिमें निर्विरोधरूपसे रहते हैं इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस तरह संसारका प्रत्येक पदार्थ, विरोधी धर्मोंका अविरुद्ध स्थल है और इसीका नाम अनेकान्त है। अनेकान्त दर्शन यह बतलाता है कि वस्तुमें सामान्यतया विभिन्न अपेक्षाओंसे अनन्त धर्म रहते हैं। किन्तु प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्मके साथ वस्तुमें रहता है, यह प्रतिपादन करना ही अनेकान्त दर्शनका विशेष प्रयोजन है।

अनेकान्तदर्शनकी आवश्यकता

वस्तुके यथार्थ परिज्ञानके लिये अनेकान्तदर्शनकी महती आवश्यकता है। किसी वस्तु या बातको ठीक-ठीक न समझकर उसके ऊपर अपने हठपूर्ण विचार या एकान्त अभिनिवेश लादनेसे बड़े-बड़े अनर्थोंकी सम्भावना है। इस विषयमें छह जन्मान्ध व्यक्तियोंकी कथा प्रसिद्ध है। जन्मसे अन्धे होनेके कारण उन्होंने हाथीको कभी नहीं देखा था। एक समय उनको एक हाथी मिल गया। उनमेंसे एकने हाथीका कान पकड़ा, एकने पेट पकड़ा, एकने सूँड़ पकड़ी। शेष व्यक्तियोंने भी भिन्न-भिन्न अवयव पकड़े। कानको पकड़नेवाले व्यक्तिने समझा कि हाथी सूपके समान है। इसीप्रकार अन्य व्यक्तियोंने भी अपनी-अपनी पकड़के अनुसार हाथीको वैसा ही समझा। एक समय वे लोग हाथीके विषयमें चर्चा करने बैठे। कान पकड़नेवाले व्यक्तिने कहा कि हाथी सूप जैसा होता है। पैर पकड़नेवाले व्यक्तिने कहा कि हाथी खंभे जैसा होता है। पेट पकड़नेवाले व्यक्तिने कहा कि हाथी पहाड़ जैसा होता है। इसीप्रकार शेष व्यक्तियोंने भी अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार हाथीके आकारका निर्देश किया। अब क्या था, उनमें परस्पर झगड़ा होने लगा। प्रत्येक समझने लगा कि अन्य सब मुझे झूँठा सिद्ध करना चाहते हैं। सब एक दूसरेको भला-बुरा कहने लगे। इतनेमें ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथीका पूर्ण ज्ञान रखनेवाले एक सज्जन वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने परस्परमें विवाद करनेवाले व्यक्तियोंसे उसका कारण पूँछा। विवादका कारण जानकर उन्होंने कहा कि तुम सब लोग अँधेरेमें हो। तुममेंसे किसीने पूर्ण हाथीको नहीं जाना है। केवल हाथीके एक अंशको जानकर और उसीको पूर्ण हाथी समझकर आपसमें लड़ रहे हो। ध्यानसे सुनो, मैं तुमको हाथीका पूर्ण रूप समझाता हूँ। कान, पैर, पेट, सूँड़ आदि सब अवयवोंको मिलाने पर हाथीका पूर्ण रूप होता है। कान पकड़नेवाले व्यक्तिने समझ लिया कि हाथी केवल इतना और ऐसा ही है। पैर आदि पकड़नेवालोंने भी ऐसा ही समझा है। लेकिन तुम सब लोगोंका ऐसा समझना कूपमण्डूकवत् ही है। कुआमें रहनेवाला मेंढक समझता है कि संसार इतना ही है। हाथीका स्वरूप केवल कान, पैर आदि रूप ही नहीं है किन्तु कान, पैर आदि समस्त अवयवोंको मिला देने पर हाथीका पूर्ण रूप बनता है। फिर क्या था इससे सबकी आँखें खुल गईं। उन्होंने अपनी-अपनी एकान्त दृष्टि पर पश्चात्ताप किया और हाथीके विषयमें पूर्ण ज्ञानको प्राप्तकर परम शान्तिका अनुभव किया।

यथार्थमें अनेकान्त पूर्णदर्शी है और एकान्त अपूर्णदर्शी है। सबसे बुरी बात तो यह है कि एकान्त मिथ्या अभिनिवेशके कारण वस्तुके एक अंशको ही पूर्ण वस्तु मान बैठता है और कहता है कि वस्तु इतनी ही है, ऐसी ही है, इत्यादि। इसीसे नानाप्रकारके झगड़े उत्पन्न होते हैं। एक मतका दूसरे मतसे विरोध हो जाता है। लेकिन अनेकान्त उस विरोधका परिहार करके उनका समन्वय करता है। ऐसे अनेकान्तको शतशः प्रणाम है। कहा भी है—

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥

पुरुषार्थसि० २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस श्लोकके द्वारा परमागमके बीजस्वरूप, जन्मान्ध पुरुषोंका हाथीके विषयमें विधान (एकान्त दृष्टि) का निषेध करनेवाले और एकान्तवादियोंके विरोधको दूर करनेवाले अनेकान्तको नमस्कार किया गया है।

एकान्त दृष्टि कहती है कि तत्त्व ऐसा ही है और अनेकान्त दृष्टि कहती है कि तत्त्व ऐसा भी है। यथार्थमें सारे झगड़े या विवाद 'ही' के आग्रहसे ही उत्पन्न होते हैं। एक कुटुम्बमें चार व्यक्ति हैं। उनमेंसे एक कहने लगे कि कुटुम्बमें जितनी सम्पत्ति है उस पर मेरा ही अधिकार है तो उन लोगोंमें झगड़ा होनेमें देर न लगेगी। भारतमें हिन्दू, मुसलमान आदि अनेक जातियाँ रहती हैं। यदि हिन्दू कहने लगें कि भारतमें रहने का तो हमारा ही अधिकार है अन्य किसी जातिका नहीं, तो ऐसी भयंकर स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके विपरीत यदि कुटुम्बका एक व्यक्ति यह कहे कि सम्पत्ति पर मेरा भी अधिकार है तथा अन्य लोगों का भी है, हिन्दू यह कहें कि भारतमें रहनेका हमारा भी अधिकार है तथा मुसलमान आदिका भी है तो किसी प्रकारके झगड़ेकी कोई बात ही नहीं है। बिना किसी भेदभावके सब प्रेमपूर्वक एक साथ रह सकते हैं। 'भी' सत्य का प्रतिपादन करता है। 'भी' एक न्यायाधीश है जो किसी बात पर विवाद होने पर उचित निर्णय देकर उस विवादको शान्त कर देता है। लेकिन 'ही' सत्यका संहार करता है। वह झगड़ोंको शान्त करना तो दूर रहा उल्टा झगड़ोंको उत्पन्न करता है। विवाद वस्तुमें नहीं है किन्तु देखनेवालोंकी दृष्टिमें है। जिसप्रकार पीलिया रोगवालेको या जो धतूरा खा लेता है उसको सब वस्तुऐं पीली ही दिखती हैं उसीप्रकार एकान्तके आग्रहसे जिनकी दृष्टि विकृत हो गई है उनको वस्तु एकान्तरूप ही दिखती है। लेकिन यथार्थमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु अनेकान्तात्मक है। वस्तुको अनेकान्तात्मक सिद्ध करनेके लिये किसी प्रमाणको आवश्यकता नहीं है। वह तो स्वयं अनुभव सिद्ध है। कहा भी है—

अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम्।

अनेकान्तदर्शन विचारोंकी शुद्धि करता है। वह मानवोंके मस्तिष्कसे दूषित हठपूर्ण विचारोंको दूर कर शुद्ध एवं सत्य विचार के लिए प्रत्येक मनुष्यका आह्वान करता है। वह कहता है कि वस्तु विराट् है, अनन्तधर्मात्मक है। अपेक्षाभेदसे वस्तुमें अनेक विरोधी धर्म रहते हैं। उन अनेक धर्मोंमेंसे प्रत्येक धर्म परस्पर सापेक्ष है। वे सब एक ही वस्तुमें विना किसी वैरभावके प्रेमपूर्वक रहते हैं। विरोधी होते हुए भी वे विरोधका अवसर नहीं आने देते। उनमें कभी झगड़ा होता ही नहीं है। यदि संसारके राजनीतिज्ञ भी अनेकान्तके स्वरूपको ठीक तरहसे समझ लें तो बहुत कुछ संभव है कि संसारमें युद्धोंका नग्न नृत्य देखनेको न मिले। क्योंकि अनेकान्तसे अनन्तधर्मसमताकी तरह मानवसमताका भी बोध हो सकता है और मानवसमताका ज्ञान होनेसे सब झगड़ों का सदाके लिए अन्त हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसलिए वस्तुस्थितिका ठीक-ठीक प्रतिपादन करनेवाले अनेकान्त तत्त्वज्ञानकी संसारको अत्यन्त आवश्यकता है। इस अनेकान्तदर्शनसे मानस शुद्धि होती है।

स्याद्वाद

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। स्याद्वाद उस अनन्त धर्मात्मक वस्तुके प्रतिपादन करने का साधन या उपाय है। अनेकान्त वाच्य है और स्याद्वाद वाचक। अनेकान्त और स्याद्वाद शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। हाँ, अनेकान्तवाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और स्याद्वादको पर्यायवाची कह सकते हैं। 'स्याद्वाद' यह संयुक्त पद है। स्यात् और वाद इन दो पदोंके मिलनेसे 'स्याद्वाद' पद बनता है। स्याद्वादमें जो 'स्यात्' शब्द है उसका ठीक २ अर्थ समझना आवश्यक है। उसको ठीक तरहसे न समझ कर कई लोगोंने तो स्याद्वादका गला ही घोंट दिया है। कोई स्यात्का अर्थ संशय करते हैं तो कोई संभावना, कोई स्यात्का अर्थ कदाचित् करते हैं तो कोई स्याद्वादके अन्तर्गत 'स्यात्' शब्द को विधिलिङ् लकारमें निष्पन्न मानते हैं। 'स्यात्' शब्दका अर्थ शायद करके कोई स्याद्वादको सन्देहवाद कहते हैं। और कोई उसको संभावनावाद कहते हैं। ऐसे लोगोंको यह जान लेना आवश्यक है कि 'स्यात्' शब्द तिङन्त नहीं है। वह एक निपात है। निपात द्योतक भी होते हैं और वाचक भी। 'स्यादस्ति' इस वाक्यमें 'अस्ति' पद अस्तित्व धर्म का वाचक है और 'स्यात्' शब्द नास्तित्त्व आदि शेष अनन्त धर्मों का द्योतक होता है। 'स्यात्' शब्द यह बतलाता है कि वस्तुमें अस्तित्वके अतिरिक्त नास्तित्व आदि अन्य धर्म भी सत्ता रखते हैं। वह सन्देहका वाचक न होकर एक निश्चित अपेक्षाका वाचक है। 'स्यात्' शब्दके अर्थको यथावत् समझनेके लिए जैन शास्त्रों पर दृष्टि डालनेका कष्ट अवश्य करना चाहिए।

जैन शास्त्रोंमें 'स्यात्' शब्द का विवरण इस प्रकार है—

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषकः।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥

आप्तमीमांसा १०३

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः ॥

आप्तमीमांसा १०४

अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः

लघीयस्त्रय स्वो० भा० ३।६२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तताद्योतकः कथंचिदर्थे स्यात्शब्दो निपातः।

पञ्चास्तिकाय टीका

स्यादित्यव्ययमनेकान्तताद्योतकं ततः स्याद्वाद अनेकान्तवाद नित्यानित्याद्यनेकधर्मशबलैकवस्त्वभ्युपगम इति यावत्।

स्याद्वादमंजरी ५

'स्यात्' शब्दके विषयमें पहली बात यह है कि वह निपात है, दूसरी बात यह है कि वह एकान्तका निराकरण करके अनेकान्त का प्रतिपादन करता है। 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' शब्दका पर्याय-वाची है। वह एक निश्चित अपेक्षाको बतलाता है। उसका अर्थ अनिश्चय या संशय नहीं है। जो लोग 'स्यात्' शब्दको संशय परक मानते हैं उन्हें एक बात और ध्यानमें रखना चाहिए कि 'स्यात्' शब्दका प्रयोग करते समय उसके साथ 'एव' शब्द भी लगा रहता है। जैसे—स्यादस्त्येव घटः। उस 'एव' शब्दके द्वारा संशय होना तो दूर रहा उल्टा वस्तुके विषयमें दृढ़ निश्चय हो जाता है।

स्याद्वादकी आवश्यकता

वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। शब्दके द्वारा उस अनन्तधर्मात्मक वस्तुका प्रतिपादन एक ही समयमें संभव नहीं है। क्योंकि शब्दोंकी शक्ति नियत है। वे एक समयमें एक ही धर्मको कह सकते हैं। अनेकधर्मात्मक वस्तुका शब्दोंके द्वारा प्रतिपादन क्रमसे ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त वस्तुके प्रतिपादन करनेका कोई उपाय नहीं है। अतः शब्दोंके द्वारा वस्तुके स्वरूपको प्रतिपादन करनेके लिए स्याद्वादकी महती आवश्यकता है। स्याद्वादके बिना वस्तुका प्रतिपादन हो ही नहीं सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्याद्वादका कार्य

स्याद्वादका मुख्य कार्य है संसारके सामने वस्तुके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करना और पूर्ण सत्यको समझाना। स्याद्वाद अनेकधर्मात्मक वस्तुका प्रतिपादन करता है। लेकिन वह प्रतिपादन क्रमशः होता है। स्याद्वाद एक समयमें मुख्यरूपसे एक धर्मका ही प्रतिपादन करता है और शेष धर्मोका गौणरूपसे द्योतन करता है। जब कोई कहता है कि 'स्यादस्ति घटः' घट कथंचित् है तो यहाँ 'स्यात्' शब्द घटमें अस्तित्व धर्मकी विवक्षाको बतलाता है कि घटका अस्तित्व किस अपेक्षासे है। वह बतलाता है कि स्वरूपादि चतुष्टयकी अपेक्षासे घटका अस्तित्व है। इसके साथ वह यह भी बतलाता है कि घट सर्वथा अस्तिरूप ही नहीं है किन्तु अस्तित्व धर्मके अतिरिक्त उसमें नास्तित्व आदि अनेक धर्म भी हैं। उन्हीं अनेक धर्मोंकी सूचना 'स्यात्' शब्दसे मिलती है। अतः वह एक निश्चित् अपेक्षावादका सूचक है। एक ही वस्तु अनेक दृष्टिकोणोंसे देखी जा सकती है। उन अनेक दृष्टिकोणोंका प्रतिपादन स्याद्वाद के द्वारा किया जाता है। स्याद्वाद पूरी वस्तु पर एक ही धर्मके पूर्ण अधिकारका निषेध करता है। वह कहता है कि वस्तु पर सब धर्मोंका समानरूपसे अधिकार है। विशेषता केवल इतनी है कि जिस धर्मके प्रतिपादनकी जिस समय आवश्यकता होती है उस समय उस धर्मको पकड़ लेते हैं और शेष धर्मोंको ढीला कर देते हैं। जैसे कि दधिमन्थन करनेवाली गोपी मथानेकी रस्सीके एक छोरको खींचती है और दूसरे छोरको ढील देती है। इसप्रकार वह रस्सीके आकर्षण और शिथिलीकरणके द्वारा दधिका मन्थन कर इष्ट तत्व घृतको प्राप्त करती है। स्याद्वादनीति भी एक धर्मके आकर्षण और शेष धर्मोंके शिथिलीकरणके द्वारा अनेकान्तात्मक अर्थकी सिद्धि करती है। कहा भी है—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकेनाकर्षयन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥

—पुरुषार्थसिद्धि० २२५

विश्वके प्रत्येक तत्त्वपर स्याद्वादमुद्रा अंकित है। दीपकसे लेकर आकाश पर्यन्त छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा प्रत्येक पदार्थ स्याद्वादमुद्रासे मुक्त नहीं है। कहा भी है—

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।

—स्या० म० ५

समन्वयका मार्ग स्याद्वाद

स्याद्वाद विभिन्न दृष्टिकोणों (various points of views) का समन्वय हमारे सामने उपस्थित करता है। वह अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार वस्तुके स्वरूपको मानकर परस्परमें विवाद करनेवाले लोगोंमें समझौता करानेमें समर्थ (Compromising) है। आज संसारमें सर्वत्र त्राहि-त्राहिकी पुकार सुनाई पड़ती है। अशान्तिसे त्रस्त मानव शान्तिकी अभिलाषा करते हैं लेकिन उनको पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। शान्तिका यथार्थ उपाय जाने बिना उनको शान्ति मिल भी कैसे सकती है। शान्तिका उपाय है विभिन्न दृष्टिकोणोंका समन्वय या एकीकरण। किसी भी वस्तुको यदि पूर्णरूपसे समझना है तो इसके लिए विभिन्न दृष्टिकोणोंसे उसका निरीक्षण करना आवश्यक है। क्योंकि ऐसा किए बिना वस्तुका पूर्णरूप समझमें नहीं आ सकता। किसी भी बातपर विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विचार करनेका नाम ही स्याद्वाद है और एक दृष्टिकोण (One point of view) से किसी विषय पर विचार करना एकान्तवाद है। एकान्तवादी अपने दृष्टिकोणसे स्थिर किए हुए सत्यको पूर्ण सत्य मानकर अन्य लोगोंके दृष्टिकोणोंको मिथ्या बतलाते हैं। मतभेदों तथा संघर्षोंका कारण यही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकान्त दृष्टि है। जैनदर्शनका स्याद्वादसिद्धान्त भिन्न-भिन्न मत-भेदों (Diverse opinions) को दूर करनेमें सर्वथा समर्थ है। विभिन्न मतावलम्बी एकान्तवादके कारण अपनेको सच्चा और दूसरोंको झूठा मान रहे हैं। लेकिन यदि विविध दृष्टिकोणोंसे भिन्न-भिन्न धर्मोंके सिद्धान्तोंको देखनेकी उदारता दिखलायी जाय तो किसी-न-किसी अपेक्षासे सब ठीक निकलेंगे। सब धर्मोंके सिद्धान्तोंका समन्वय करनेके लिए स्याद्वादसिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इसप्रकार स्याद्वाद हमारे सामने समन्वयका मार्ग उपस्थित करता है।

स्याद्वादका सिद्धान्त सुव्यवस्थित, परिमार्जित एवं आवश्यक है। यह न अनिश्चितवाद है और न संदिग्धवाद। पहले बतलाया जा चुका है कि स्याद्वाद किसी निश्चित अपेक्षासे एक निश्चित धर्मका प्रतिपादन करता है। उसमें सन्देहके लिए तो रंचमात्र भी अवकाश नहीं है। अनेक धर्मात्मक वस्तुकी ठीक-ठीक व्यवस्था करनेके कारण स्याद्वाद सुव्यवस्थित है। सुव्यवस्थित होनेके साथ-साथ वह व्यावहारिक (Practical) भी है। स्याद्वाद नित्य व्यवहारकी वस्तु है। इसके बिना लोक-व्यवहार चल नहीं चल सकता। जितना भी व्यवहार होता है वह सब आपेक्षिक होता है और आपेक्षिक व्यवहारके कथनका नाम ही स्याद्वाद है। अनेक विरोधी तत्त्वोंका समन्वय किए बिना लौकिक जीवनयात्रा भी नहीं बन सकती। विरोधी धर्मोंके समन्वयके अभावमें अर्थात् एकान्तके सद्भावमें सदा संघर्ष और विवाद होते रहेंगे और विवादका अन्त तभी होगा जब स्याद्वादसे तत्त्वोंका यथार्थ निरूपण होने पर सब अपने-अपने दृष्टिकोणोंके साथ अन्य दृष्टिकोणोंका भी समन्वय करेंगे।

स्याद्वाद जैनदर्शन एवं जैन तत्त्वज्ञानकी नींव (Fouudation)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। स्याद्वाद वैज्ञानिक और युक्तियुक्त—(Scientifio and rational) है। जैनदर्शनमेंसे स्याद्वादको निकाल दीजिए तो उस दर्शनमें कुछ भी जान नहीं रह जायगी। भगवान् महावीरने इसी स्याद्वादका उपदेश दिया था। आचार्योंने स्याद्वादके मूल्यको समझा है और उसे केवलज्ञानके समान बतलाया है—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

आप्तमीमांसा १०५

केवलज्ञान भी सर्वतत्त्व प्रकाशक है और स्याद्वाद—श्रुतज्ञान भी सर्वतत्त्वप्रकाशक है। उनमें भेद केवल इतना है कि केवलज्ञान साक्षात्रूपसे सब तत्त्वोंको जानता है और स्याद्वाद परोक्षरूपसे सब तत्त्वोंको जानता है। स्याद्वाद अनेकान्तात्मक अर्थका प्रतिपादन करनेके कारण पूर्णदर्शी है। अनेकान्त और पूर्णतामें अविनाभाव सम्बन्ध है। अतः जिसप्रकार केवलज्ञान पूर्ण है उसी प्रकार स्याद्वाद भी पूर्ण है और इस स्याद्वादसे वचनशुद्धि होती है।

सप्तभंगी

स्याद्वाद अनन्त धर्मोंमेंसे एक समयमें एक धर्मका प्रतिपादन करता है। प्रत्येक धर्मका प्रतिपादन उसके प्रतिपक्षी विरोधी धर्मकी अपेक्षासे सात प्रकारसे किया जाता है। इसी सात प्रकारसे प्रत्येक धर्मके प्रतिपादन करनेकी शैलीका नाम सप्तभंगी है। वस्तुमें अनन्त धर्मयुगल हैं, इसलिए अनन्त धर्मयुगलोंकी अपेक्षासे अनन्त सप्तभंगियाँ बनती हैं। सप्तभंगीका लक्षण इसप्रकार है—

प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभंगी।

——तत्त्वार्थवार्तिक १–६५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक वस्तुमें अविरोधपूर्वक विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करना सप्तभंगी है।

अस्तित्व एक धर्म है और नास्तित्व उसका प्रतिपक्षी धर्म है। अपने प्रतिपक्षी सापेक्ष अस्तित्व धर्मकी अपेक्षासे सप्तभंगी इस-प्रकार बनेगी।

१	स्यादस्ति घटः	घट कथंचित् है।
२	स्यान्नास्ति घटः	घट कथंचित् नहीं है।
३	स्यादस्ति नास्ति घटः	घट कथंचित् है और नहीं है।
४	स्यादवक्तव्यो घटः	घट कथंचित् अवक्तव्य है।
५	स्यादस्ति अवक्तव्यश्च घटः	घट कथंचित् है और अव-क्तव्य है।
६	स्यान्नास्ति अवक्तव्यश्च घटः	घट कथंचित् नहीं है और अव-क्तव्य है।
७	स्यादस्ति नास्ति अवक्त-व्यश्च घटः	घट कथंचित् है, नहीं है, और अवक्तव्य है।

घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे है, परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे नहीं है। यह कथन पृथक्-पृथक्-रूपसे है। और एक कथनके बाद दूसरे कथनमें कुछ कालके अन्त-रालकी अपेक्षा भी है। घटमें अस्तित्वके कथनके बाद ही यदि नास्तित्वका कथन किया जाय तो घट उभयरूप (अस्ति और नास्ति रूप) होगा। यदि अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्मोंको एक समयमें ही कहनेका कोई साहस करे तो उसका ऐसा करना दुःसाहस ही होगा, क्योंकि शब्द एक समयमें एक ही धर्मका कथन कर सकते हैं। ऐसी स्थितिमें घटको अवक्तव्य कहनेके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं रहता। यहाँ यद्यपि घटको अव-क्तव्य कहा गया है पर वह सर्वथा अवक्तव्य नहीं है किन्तु कथंचित्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवक्तव्य है। इसलिए घटको अवक्तव्य शब्दका वाच्य होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। घटमें पहले स्वरूपादिचतुष्टयकी अपेक्षा होनेसे और इसके बाद ही स्वरूपादिचतुष्टय और पररूपादिचतुष्टय की युगपत् अपेक्षा होनेसे घट स्यादस्ति अवक्तव्य होता है। पहले पररूपादिचतुष्टयकी अपेक्षा होनेसे और इसके बाद ही स्वरूपादिचतुष्टय और पररूपादिचतुष्टयकी युगपत् अपेक्षा होनेसे घट स्यान्नास्ति अवक्तव्य होता है। पहले क्रमशः स्वरूपादिचतुष्टय और पररूपादिचतुष्टयकी पृथक्-पृथक् अपेक्षा होनेसे और इसके बाद ही दोनोंकी युगपत् अपेक्षा होनेसे घट स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य होता है। उक्त प्रकारसे नास्तित्व धर्म सापेक्ष अस्तित्वधर्मकी अपेक्षासे सप्तभंगी बनती है। इसीप्रकार एकत्व-अनेकत्व, नित्यत्व-अनित्यत्व, भिन्नत्व-अभिन्नत्व आदि युगल धर्मोंकी अपेक्षासे भी सप्तभंगी बना लेना चाहिए।

उक्त सात भंगोंमें पहला, दूसरा और चौथा ये तीन मूल भंग हैं और शेष चार भंग संयोगजन्य हैं। वे मूल भंगोंके संयोगसे बनते हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि भंग सात ही क्यों होते हैं? इस प्रश्नका उत्तर दो प्रकारसे दिया जा सकता है। एक—गणितके नियमके अनुसार और दूसरे प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार —गणितके नियमानुसार तीन भूल भंगोंके अपुनरुक्त भंग सात ही हो सकते हैं, अधिक नहीं। मूल तीन भंग हैं—१ अस्ति, २ नास्ति और ३ अवक्तव्य। इनके द्विसंयोगी तीन—४ अस्ति-नास्ति, ५ अस्ति-अवक्तव्य, और ६ नास्ति-अवक्तव्य और त्रिसंयोगी एक—७ अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य भंग हैं।

प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार सात भंगोंके नियमका उत्तर इस प्रकार है। चूँकि प्रश्नकर्ता प्रश्न ही सात करता है? सात प्रश्न करनेका कारण उसकी सात प्रकारकी जिज्ञासाएँ हैं। सात प्रकारकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासाओंका कारण उसके सात संशय हैं। और सात संशयोंका भी कारण उनके विषयभूत वस्तुनिष्ठ सात धर्म हैं। इस प्रकार उत्तरदाता प्रश्नोंके अनुसार सात उत्तर देता है। ये सात उत्तर ही 'सप्तभंगी' कहे गये हैं। वस्तुमें विरोधी-अविरोधी धर्मयुगल अनन्त हैं। अतः प्रत्येक धर्मयुगलकी अपेक्षासे वस्तुमें अनन्त सात-सात भंग होते हैं। अथवा अनन्त सप्तभंगियाँ बनती हैं। अर्थात् सत्त्व-असत्त्व, एकत्व-अनेकत्व, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि युगलोंसे अनन्त सप्तभंगियां सिद्ध होती हैं। जैसा कि आचार्य विद्यानन्दके निम्न कथनसे स्पष्ट हैं :—

'अनन्तानामपि सप्तभंगीनामिष्टत्वात्। तत्रैकत्वानेकत्वादिकल्पनयापि सप्तानामेव भंगानामुपपत्तेः। प्रतिपाद्यप्रश्नानां तावतामेव संभवात्। प्रश्नवशादेव सप्तभंगीति नियमवचनात्। सप्तविध एव तत्र प्रश्नः कुत इति चेत् सप्तविधजिज्ञासाघटनात्। सापि सप्तविधा कुत इति चेत् सप्तधासंशयोत्पत्तेः। सप्तधैव संशयः कथमिति चेत् तद्विषयवस्तुधर्मसप्तविधत्वात्।'

अष्टसहस्री पृ० १२५–१२६

आक्षेप और परिहार

कुछ लोग जैनदर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्तको लेकर आक्षेप करते हैं कि जैनदर्शनका अपना कोई मत नहीं है। उसने एक बात इस मतसे ली, एक बात उस मतसे ली, और कह दिया कि वस्तु ऐसी भी है वैसी भी है। वस्तु अनित्य है यह बौद्धमतका सिद्धान्त है। वस्तु नित्य है यह सांख्यमतका सिद्धान्त है। जैनदर्शनने दोनोंको मिला कर कह दिया कि वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। इसप्रकारके स्याद्वादसे वस्तुके स्वरूपका निर्णय होना तो दूर रहा उल्टा उसके विषय में संशय होने लगता है। इसप्रकारका आक्षेप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करनेवालोंसे निवेदन है कि वे शान्त मस्तिष्क होकर वस्तुके विषयमें थोड़ा विचार करें। जैनदर्शनका अपना कुछ नहीं है और उसने सब कुछ अन्य दर्शनोंसे उधार लिया है इसका उत्तर यह भी हो सकता है कि अन्य दर्शनोंका अपना कुछ नहीं है और जैनदर्शन की अनेक बातोंमेंसे एक-एक बातको लेकर अन्य दर्शनोंकी सत्ता है। अर्थात् जैनदर्शन जहाँ सम्पूर्ण सत्यको प्रकट करता है अन्य-दर्शन वहाँ सत्यके एक-एक अंशको प्रकट करते हैं। वे सत्यके एक अंश को प्रगट करते हैं, इसमें तो कोई बुराई नहीं है लेकिन बुराई इसमें है कि वे सत्यके एक-एक अंशको सम्पूर्ण सत्य मान बैठे हैं। स्याद्वाद सिद्धान्त कल्पित नहीं है और न कहींसे उधार लिया गया है। वह तो वस्तुके यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादक होनेसे वैज्ञानिक है, स्वतः प्रतिष्ठित है और सुव्यवस्थित है।

उपसंहार

इस पुस्तकमें जैनदर्शनके अनेकान्त और स्याद्वाद सिद्धान्तपर संक्षेपमें विचार किया गया है। साधारण जनोंकी बात तो छोड़ दीजिये, बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानोंने भी स्याद्वादको नहीं समझ पाया है। इस विषयमें अपनी अज्ञतावश उन्होंने जो मनमें आया सो लिख दिया है। ऐसे विद्वानोंकी भ्रान्त धारणाओंका परिहार इस लघु पुस्तकमें नहीं किया गया है, क्योंकि इसका उद्देश्य सर्व-साधारणको थोड़ेमें और सरल भाषामें अनेकान्त और स्याद्वादके विषयमें कुछ ज्ञान कराना है। वैसे अनेकान्त और स्याद्वाद इतना गंभीर, विस्तृत एवं गूढ़ सिद्धान्त है कि उसके ऊपर एक बड़ा ग्रन्थ लिखा जाने योग्य है। अनेकान्त और स्याद्वाद क्या है तथा दूसरे लोगोंने उसे किस रूपमें समझा है, इस विषयमें कुछ अजैन विद्वानों-के विचार देखिए:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झाने लिखा है—

"जबसे मैंने शंकराचार्य द्वारा जैनसिद्धान्तका खण्डन पढ़ा है तबसे मुझे विश्वास हुआ है कि इस सिद्धान्तमें बहुत कुछ है जिसे वेदान्तके आचार्योंने नहीं समझा। और जो कुछ मैं अबतक जैनधर्म को जान सका हूँ उससे मेरा यह दृढ़ विश्वास हुआ है कि यदि वे जैनधर्मको उसके मूल ग्रन्थोंसे देखनेका कष्ट उठाते तो उन्हें जैन-धर्मका विरोध करनेकी कोई बात नहीं मिलती।"

हिन्दूविश्वविद्यालय काशीके दर्शनशास्त्र (philosophy) के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्री फणिभूषण अधिकारीने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है—

"जैनधर्मके स्याद्वाद सिद्धान्तको जितना गलत समझा गया है उतना किसी अन्य सिद्धान्तको नहीं। यहाँ तक कि शंकराचार्य भी इस दोषसे मुक्त नहीं हैं। उन्होंने भी इस सिद्धान्तके प्रति अन्याय किया है। यह बात अल्पज्ञ पुरुषोंके लिए क्षम्य हो सकती थी। किन्तु यदि मुझे कहनेका अधिकार है तो मैं भारतके इस महान् विद्वान्के लिए तो अक्षम्य ही कहूँगा। यद्यपि मैं इस महर्षिको अतीव आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने इस धर्मके दर्शन-शास्त्रके मूल ग्रन्थोंके अध्ययन करनेकी परवाह नहीं की।"

पं० राममिश्रजी शास्त्री—

"स्याद्वाद जैनधर्मका एक अभेद्य किला है जिसके अन्दर प्रवादियोंके मायामय गोले प्रवेश नहीं कर सकते।"

जैकोबी (एक जर्मन विद्वान)—

"जैनधर्मके सिद्धान्त प्राचीन भारतीय तत्त्वज्ञान और धार्मिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्धतिके अभ्यासियोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसके स्याद्वादसे सर्व सत्य विचारोंका द्वार खुल जाता है।"

डा० थामस—

"न्यायशास्त्रमें जैन न्यायका स्थान बहुत ऊँचा है। स्याद्वादका स्थान बड़ा गम्भीर है। वह वस्तुओंकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

महावीरप्रसादजी द्विवेदी—

"प्राचीन ढर्रेके हिन्दू धर्मावलम्बी बड़े-बड़े शास्त्री अभी तक यह नहीं जानते कि जैनियोंका स्याद्वाद किस चिड़ियाका नाम है।"

महात्मा गान्धी—

"जिसप्रकार स्याद्वादको मैं जानता हूँ उसीप्रकार मानता हूँ। मुझे यह अनेकान्त बड़ा प्रिय है।"

स्याद्वादः सत्यलाञ्छनः। जैनं जयतु शासनम्।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१९	किसौ	किसी
३	२	सें करना	से विचार करना
३	७	द्रत्येक	प्रत्येक
६	७	बतलाये दिए हैं	बतलाये हैं
१०	२१	और जिसप्रकार पट रूपेण भी असत् हो	और जिसप्रकार घट पटरूपेण असत् है उसीप्रकार घटरूपेण भी असत् हो
११	१४	विरोधौ	विरोधी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमालाके प्रकाशन

१.	मेरी जीवन-गाथा भाग १	....	८-००
२.	,, भाग २	....	४-२५
३.	वर्णी-वाणी भाग १	....	६-००
४.	,, ,, भाग २	....	४-००
५.	,, ,, भाग ३	....	६-००
६.	,, ,, भाग ४	....	३-५०
७.	जैन साहित्यका इतिहास (पूर्व पीठिका)	....	१०-००
८.	जैन-दर्शन	....	१०-००
*९.	पंचाध्यायी	....	९-००
*१०.	श्रावकधर्म-प्रदीप	....	४-००
११.	तत्त्वार्थसूत्र	....	५-००
१२.	द्रव्यसंग्रह भाषा-वचनिका	....	४-००
१३.	अपभ्रंश प्रकाश	....	३-००
१४.	मन्दिर-वेदीप्रतिष्ठा कलशारोहण विधि (नया संस्करण)	....	२-००
१५.	सामायिक पाठ (सानुवाद)	....	०-६०
१६.	सत्यकी ओर	....	१-२५
१७.	अध्यात्म-पत्रावली	....	१-००
१८.	आदिपुराणमें प्र	..	१२-००
१९.	समयसार-प्रवच	..	१२-००
२०.	तत्त्वार्थसार	..	६-००
२१.	सत्प्ररूपणासूत्र	.	५-००
*२२.	अपरिग्रह और	..	०-२५
२३.	अनेकान्त और स्याद्वाद (नया संस्करण)	....	०-६०

Serving JinShasan
021424
gyanmandir@kobatirth.org

* अप्राप्य । पुनः प्रकाशनकी योजना है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org